AMOGHVARTA

ISSN : 2583-3189

बाणभट्टकालीन गृहस्थाश्रम

ORIGINAL ARTICLE

Author
डॉ. चन्द्रशेखर सिंह राजपूत
सहायक प्राध्यापक
हिन्दी विभाग
शासकीय नवीन महाविद्यालय कुई–कुकदुर
तह.–पण्डरिया, जिला–कबीरधाम, छत्तीसगढ़, भारत

शोध सार

पूरे जीवन काल को 100 वर्ष मानकर चार भागों में विभक्त किया गया था। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, सन्यास,तथा वानप्रस्थ आश्रम । प्रत्येक आश्रमों को 25– 25 वर्षों में विभाजित किया गया था, जिसमे ग्रहस्थ आश्रम दूसरा और जीवन काल में सबसे महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसी आश्रम में अन्य तीनों आश्रम का महत्त्व निहीत है। गृहस्थाश्रम युवक–युवतियो को परिणय सूत्र में बॉधकर भारतीय संस्कृति में वर्णित तीनों ऋण को (देव, ऋषि, पितृ) चुकाना एवं पंचमहायज्ञ करते हुए धर्म, अर्थ, काम इन त्रिवर्गो का उपयोग करते हुए सांसारिकता भी यहीं सिखता था। मनु ने गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने वाले व्यक्ति को ''गृहपति'' संज्ञा दी थी। बाणकालीन समाज में अधिकांशतः विवाह माता–पिता की आज्ञा से होता था। इस प्रकार के विवाह का उल्लेख हर्षचरितम् में मिलता है। मनुस्मृति में कहा है कि जैसे सम्पूर्ण जीव वायु के आश्रय में जीते हैं वैसे ही गृहस्थ के आश्रय से अन्य आश्रम चलते हैं। अतः गृहस्थ जीवन सर्वश्रेष्ठ है।

मुख्य शब्द

बाणभट्ट, गृहस्थाश्रम, जीवन, समाज.

परिचय

गृहस्थाश्रम केवल विषय भोग के लिए ही नहीं है, वरन् आत्मसुख, पवित्रप्रेम, वात्सल्य, त्याग, सहयोग, तपस्या की तपोभूमि है, जो मनुष्य को पूर्णता प्रदान करती है। भारतीय संस्कृति में वर्णित तीनों ऋण को (देव, ऋषि, पितृ) चुकाना एवं पंचमहायज्ञ करते हुए धर्म, अर्थ, काम इन त्रिवर्गो का उपयोग करते हुए सांसारिकता भी यहीं सिखता था। कहा जा सकता है कि तीनों आश्रम गृहस्थ आश्रम पर ही अवलंबित होते थे।

भारतीय समाज में प्रारम्भ से ही एक ऐसे जीवन जीने की पद्धति को मान्यतादी गई है जो मात्र सांसारिक जीवन ही न हो वरन् जिसमें सामाजिकता के साथ–साथ आध्यात्मवाद का भी समावेश हो। हिन्दू धर्म–दर्शन की आश्रम व्यवस्था जीवन का वह क्रमबद्ध इतिहास है जिसका उद्देश्य जीवन यात्रा को विभिन्न स्तरों में बाँटकर प्रत्येक स्तर पर मनुष्य को केन्द्रित कर इस भॉति तैयार करना है कि वह संसार की सभी वास्तविकताओं को ज्ञात कर सके तथा प्रयास और क्रियायें करते हुए जीवन की अनिवार्यताओं की पूर्ति करता हुआ मोक्ष प्राप्ति के चरम लक्ष्य तक पहुँच जाये। इस हेतु मनुष्य की औसत आयु सौ वर्ष मानकर ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास चार विभागों में विभक्त कर पच्चीस–पच्चीस वर्ष निधारित की गयी।

गृहस्थाश्रम जीवन का द्वितीय चरण था। विद्यार्जन उपरान्त ब्रह्मचारी स्नातक बनकर विवाह करता था और

गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था। लौकिक दृष्टि से गृहस्थ आश्रम सभी आश्रमों में श्रेष्ठ और प्रमुख माना गया था, क्योंकि अन्य तीनों आश्रमों का अस्तित्व इसी पर निर्भर रहता था। गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने वाले व्यक्ति को ''गृहपति'' संज्ञा होती थी।[1] मनु ने गृहस्थ के कर्त्तव्यों को नियमित करने के लिए नियमों का समाजीकरण किया। उन्होंने इसे यज्ञ की संज्ञा देकर सामाजिक संहिता या नियमों के क्षेत्र के अन्तर्गत लाया है। प्रत्येक गृहस्थ के लिए प्रतिदिन पंचमहायज्ञ अनिवार्यतः करने का निर्देश था। पंचमहायज्ञ से तात्पर्य ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ एवं मनुष्य यज्ञ से है।

पितृयज्ञ में पितरों के प्रति जलांजलि (तर्पण) का विधान था। तर्पण के द्वारा पितृदेवों को जल प्रदान करके गृहस्थ वस्तुतः संतान होने के अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करता था। हर्षचरितम् में बाणभट्ट ने प्रेत के लिए पवित्र भात के उजले पिण्ड देने का उल्लेख किया है। देवयज्ञ से तात्पर्य देवताओं को आहुति, बलि या अन्य प्रकार से पदार्थ समर्पित करना था। भूत यज्ञ से तात्पर्य अन्य प्राणियों के लिए खाद्यान्न प्रदान करना था। मनुष्य यज्ञ से तात्पर्य था– अतिथि सत्कार। यहाँ अतिथि को 'देव' का स्थान दिया गया था इसलिए गृहस्थ की दैनंदिनी में अतिथि सत्कार को यज्ञ का रूप प्रदान किया गया था।

इन सभी यज्ञों को गृहस्थाश्रम में सपत्नीक बन्धु–बान्धव, पुत्रादि सहित सम्पन्न किये जाने का विधान है। पत्नी संयाज यज्ञ में पुरूष की सहधर्मिणी बनने वाली स्त्री को पुरूष की पत्नी होना आवश्यक था और विवाहित स्त्री ''पत्नी'' तभी कही जा सकती थी जब वह विधिवत् विवाह–सूत्र में आबद्ध की गयी हो। यहाँ विधिवत् विवाह से तात्पर्य अग्निसाक्षी विवाह से है।

बाणकालीन समाज में अधिकांशतः विवाह माता–पिता की आज्ञा से होता था।[2] बाण ने इस प्रकार का विवाह का उल्लेख हर्षचरितम् में किया है। राज्यश्री का विवाह ग्रहवर्मा के साथ हुआ था जिसका लग्न ज्योतिषों ने निकाला था और वर–वधु अग्नि की परिक्रमा कर दाम्पत्य सूत्र में आबद्ध हो गये थे। इस प्रकार के विवाह को श्रेष्ठ माना जाता था, किन्तु बाण की कादम्बरी–कथा के संकेतों से यह ज्ञात होता है कि पुत्र अथवा पुत्री को जीवन–साथी चुनने की पर्याप्त स्वतन्त्रता थी, परन्तु बाणकालीन समाज में एकमात्र अग्निसाक्षी विवाह को ही नैतिक माना जाता था।

घर में आये अतिथि का यथासम्भव सत्कार करना प्रत्येक गृहस्थ का परमकर्त्तव्य था। अतिथि को देवता माना गया है और उसके सत्कार को गृहस्थ के लिए धर्म के समान अनिवार्य माना गया है। अतिथि के आने पर उसे अर्ध्यपाद प्रदान किये जाने की परम्परा थी। इसका उदाहरण कादम्बरी में मिलता है, जब किन्नर युगल का पीछा करता हुआ युवराज चन्द्रापीड अच्छोद सरोवर के निकट देवालय में पहुँचता है तब वहाँ तपःपूत मूर्तिमहाश्वेता को देखता है। तदन्तर महाश्वेता चन्द्रापीड से आतिथ्य स्वीकार करने के लिए कहती है।[3] बाण के इस वर्णन से ज्ञात होता है कि अतिथि सत्कार केवल गृहस्थ ही नहीं,अपितु तपस्यारत व्यक्ति भी ''अतिथि देवो भवः'' के आदर्श को स्वीकार करते थे।

बाणकालीन समाज में परिवार प्रायः संयुक्त थे जिनमें माता–पिता, एकाधिक भाई एवं सभी की विवाहित–अविवाहित सन्तानें सभी एक साथ रहते थे। ऐसे परिवार को कुटुम्ब कहा जाता है। इस कुटुम्ब का प्रधान कुटुम्ब का वयोवृद्ध व्यक्ति होता था। इस वयोवृद्ध प्रधान के जीवित रहते हुए अन्य सभी सदस्यों को उसकी आज्ञा माननी होती थी। यह संयुक्त परिवार में अनुशासन था। गृहपति की हैसियत से वह परिवार में सर्वोसर्वा था। आयु, अनुभव, ज्ञान आदि के कारण उसका महत्वपूर्ण स्थान तथा उसके अधिकार सुरक्षित रहते थे। वयोवृद्ध मुखिया सभी प्रकार के सामाजिक आयोजनों में तथा साथ ही राज दरबार में भी पूर्ण कुटुम्ब का प्रतिनिधित्व करता था।

व्यक्ति और समाज के लिए परिवार बहुत महत्वपूर्ण संस्था है। ज्ञान, आविष्कार और संस्कृति के विकास में परिवार की अहम भूमिका रही है। एक समाज की सबसे छोटी इकाई परिवार होता है और परिवार के आदर्श होने से ही समाज आदर्श बन सकता है– इसका ज्ञान बाण के काल में भी सबको भली–भॉति था और एक आदर्श समाज बनाने में सहयोगी उपर्युक्त समस्त परम्पराएँ भी तत्कालीन समाज में प्रचलित थीं। पिता के न रहने पर अथवा रहने पर भी अर्थात् प्रत्येक परिस्थिति में माता की आज्ञा अनुल्लंघनीय मानी जाती थी। माता पारिवारिक जीवन का केन्द्र थी। घर की आन्तरिक व्यवस्था गृहपति अपनी पत्नी को ही सौंपता था इसलिए वह 'गृहणीपद' से भी सुशोभित होती

थी। परिवार के आन्तरिक जीवन का संचालन या परिचालन उसी के हाथ में रहता था। वह प्रत्येक कार्य में गृहपति की सहायता करती थी। उसके बिना कोई भी धार्मिक कार्य नहीं किया जा सकता था। बाण नेहर्षचरितम् में उल्लेख किया है कि जब राज्यश्री विवाह के योग्य हो जाती है तब राजा प्रभाकर वर्धन अपनी पत्नी यशोमती से विचार–विमर्श करते हैं[4] और पूछते हैं कि यदि तुमभी स्वीकार करो तो मैं इसे (राज्यश्री) ग्रहवर्मा को सौंपना चाहता हूँ।[5] बाण के इस वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि बाणकालीन समाज में पत्नी का स्थान बहुत ही सम्माननीय था। समाज में नारी की स्थिति बहुत अच्छी थी।

ज्येष्ठ भ्राता का कनिष्ठ बन्धुओं द्वारा पिता के समान आदर करना एवं पिता के समान पूजनीय मानना भी बाणकालीन समाज की उच्च आदर्श परम्परा थी। क्रमशः छोटे भाईयों द्वारा बड़े भाई को सम्मान देना छोटे भाईयों का धर्म था। बाण ने हर्षचरितम् में लिखा है जब राज्यवर्धन युद्ध के लिए प्रयाण करते हैं, पीछे–पीछे हर्ष भी कुछ पड़ावों तक जाते हैं।[6] पिता प्रभाकर वर्धन की मृत्यु उपरान्त हर्ष अपने बड़े भाई के लिए अत्यन्त चिन्तित होकर दर्शन की उत्कण्ठा से उनके आगमन की प्रतीक्षा में किसी न किसी प्रकार से समय व्यतीत करते हैं।[7] हर्ष की यह भावना बड़े भाई राज्यवर्धन के प्रति अपार भातृप्रेम और हृदय की पवित्रता को व्यंजित करने वाली है। बाण के उपर्युक्त वर्णन से ज्ञात होता है कि तात्कालीन समाज में पारिवारिक सदस्यों में एक–दूसरे के लिए अपार आदर, सम्मान, स्नेह और प्रेम के भाव थे। वे एक–दूसरे की रक्षा के लिए प्राणोत्सर्ग तक करने को तत्पर रहते थे।

सम्पूर्ण आश्रम व्यवस्था यूँ तो समाज को निर्द्वन्द्व एवं सुचारू रूप से क्रियाशील रखने में था, परन्तु इन आश्रमों में दीक्षित हो सकने का अधिकार सभी वर्णों को नहीं था। यह आश्रम व्यवस्था समस्त उपनयन धारण करने वाले द्विज लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ही अपना सकते थे। शूद्रों के लिए केवल गृहस्थ आश्रम की योजना थी, किन्तु सामान्य गृहस्थों समान यज्ञादि का उन्हें अधिकार नहीं था। तात्पर्य यह है कि आश्रम व्यवस्था एवं वर्ण व्यवस्था का परस्पर गहरा सम्बन्ध था और विभिन्न आश्रमों में दीक्षित होने की योग्यता विभिन्न वर्णानुसार थी।

आश्रम व्यवस्था में गृहस्थ आश्रम को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। मनुस्मृति में कहा है कि जैसे सम्पूर्ण जीव वायु के आश्रय में जीते हैं वैसे ही गृहस्थ के आश्रय से अन्य आश्रम चलते हैं। गृहस्थ यज्ञ तथा अन्नादि के द्वारा न केवल देवों को प्रसन्न करता है, अपितु ब्रह्मचारियों वानप्रस्थियों एवं सन्यासियों जो कि भिक्षान्न के द्वारा जीवन धारण करते हैं, का भी पोषण करते हैं। अतः गृहस्थ जीवन सर्वश्रेष्ठ है।

निष्कर्ष

गृहस्थाश्रम त्याग, सहयोग, तपस्या की तपोभूमि है, जो मनुष्य को पूर्णता प्रदान करती है तथा तीनों ऋण से (देव, ऋषि, पितृ) मुक्ति प्रदान कराती है। विद्यार्जन उपरान्त ब्रह्मचारी स्नातक बनकर विवाह करता था और गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था। ग्रहस्थाश्रम युवक–युवतियो एक साथ रहकर समाज निर्माण मे सहयोग करनें के लिए सामाजिक स्वतन्त्रता प्रदान करती है तथा यह विवाह नामक संस्था के माध्यम से संस्कार करने का महत्तवपूर्ण साधन है। यदि कहा जाये (गृहस्थाश्रम) विवाह के माध्यम से मानव निर्माण की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है तो इस वाक्य में काई अतिश्योक्ति नही होगी, अतः गृहस्थ जीवन सर्वश्रेष्ठ है।

संदर्भ सूची

1. अग्रवाल, वासुदेवशरण (1969) *पाणिनीकालीन भारतवर्ष,* चौखम्बा विघाभवन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, पृ. 96।
2. बाणभट्ट (1972) *हर्षचरितम्,* चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, तृतीय संस्करण, पृ. 241।
3. अग्रवाल, वासुदेवशरण (1970) *कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन,* चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, पृ. 149।
4. बाणभट्ट (1972) *हर्षचरितम्,* चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, तृतीय संस्करण, पृ. 240–241।
5. बाणभट्ट (1972) *हर्षचरितम्,* चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, तृतीय संस्करण, पृ. 241।
6. बाणभट्ट (1972) *हर्षचरितम्,* चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, तृतीय संस्करण, पृ. 257।
7. बाणभट्ट (1972) *हर्षचरितम्,* चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, तृतीय संस्करण, पृ. 305।

––==00==––